क्या मनुष्य बंदर की संतान हैं?

डॉ. सुशील जोशी

हमारे यहां औपचारिक तौर पर बंदर-मनुष्य सम्बंध का सवाल बहुत देर से उठा। डारविन द्वारा प्राकृतिक चयन से जैव विकास के सिद्धांत के प्रतिपादन के बाद पश्चिमी देशों में कई लोगों ने यही सवाल उठाया था और डारविन का मज़ाक बनाया था। जैव विकास का विरोध करने वालों में मुख्यतः चर्च की संस्थाएं शामिल थीं। आज खास तौर से यूएसए में जैव विकास के विरोध ने एक नया रूप अख्तियार कर लिया है।

चित्र - निशीथ मेहता

शुरू-शुरू में तो चर्च यह मानने को तैयार ही नहीं था कि सजीव जगत में विकास या परिवर्तन जैसी कोई चीज़ होती होगी। मगर सतत परिवर्तनशील जीव जगत के पक्ष में प्रमाण इतने पुख्ता हैं कि आज वे भी यह मानने लगे हैं कि विकास तो हुआ है। धरती के लंबे इतिहास में कई जीव विलुप्त हुए हैं और समय-समय पर नए जीव प्रकट हुए हैं। अब झगड़ा इस बात पर है कि यह विकास होता कैसे है। जहां जीव वैज्ञानिक मानते हैं कि प्राकृतिक प्रक्रियाओं के प्रभाव में जैव विकास होता है, वहीं धार्मिक आस्था वाले लोग मानते हैं कि जो भी विकास होता है वह एक सृष्टा की इच्छा के अनुसार होता है। जीव वैज्ञानिकों का मत है कि जीवजगत में सतत परिवर्तन का कोई पूर्व-निर्धारित लक्ष्य नहीं है, वहीं धार्मिक आस्था यह है कि मनुष्य की रचना ही इस प्रक्रिया का लक्ष्य था, जो पूरा हो चुका है।

खैर, भारतीय परिदृश्य पर आते हैं। हाल ही में मैंने 'योग गुरु' रामदेव के एक व्याख्यान का अंश सुना था। उसमें शायद वे पश्चिमी विचारधारा की बात कर रहे थे। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि जैव विकासवाद कहता है कि मनुष्य बंदर के वंशज हैं और वे इससे असहमत हैं। दूसरा सवाल उन्होंने यह उठाया कि यदि यह मान लिया जाए कि बंदर विकसित होकर मनुष्य बन गए तो अब दुनिया में बंदर क्यों हैं? दरअसल, उन्होंने इस सवाल को ज़्यादा सामान्य रूप में भी रखा था - यदि जैव विकास के सिद्धांत के मुताबिक शुरुआती एक-कोशिकीय जीव (जैसे अमीबा वगैरह) विकसित होकर बहु-कोशिकीय जीव बन गए तो आज दुनिया में अमीबा क्या कर रहे हैं। उनका मत है कि यदि जैव विकास हुआ है, तो सारे पूर्वजों का अस्तित्व नहीं रहना चाहिए क्योंकि जैव विकास के सिद्धांत के मुताबिक वे तो विकसित होकर कुछ और बन गए हैं।

देखा जाए, तो ये सवाल जैव विकास के बारे में पूछे जाने वाले सबसे सामान्य सवाल हैं। इन सवालों में जाने से पहले सरसरी तौर पर यह देख लें कि प्राकृतिक चयन से जैव विकास का सिद्धांत कहता क्या है।

जीव जगत में बहुत विविधता पाई जाती है। यह एक ऐसी बात है जिसे आंखें खुली रखने पर कोई भी देख सकता है। सारे मनुष्य मनुष्य ही हैं मगर किसी न किसी हद तक वे अलग-अलग भी हैं। इसी प्रकार से सारे एनॉफिलीज़ मच्छर, सारे *एंटअमीबा हिस्टोलिटिका*, सारे टीबी बैक्टीरिया एक समान होते हुए भी उनमें काफी विविधता पाई जाती है। मनुष्यों की विविधता तो हम आसानी से देख सकते हैं और यह भी जानते हैं कि यह कुदरती विविधता

कई बार सामाजिक भेदभाव और अत्याचारों का सबब बनी है। आम तौर पर यह विविधता मनुष्यों के परस्पर मेलजोल में बाधक नहीं बनती और दुनिया की कोई भी स्त्री किसी भी पुरुष के साथ संतानोत्पत्ति कर सकती है। इसी आधार पर हम कहते हैं कि मनुष्य एक प्रजाति (*होमो सेपिएन्स*) है।

अलबत्ता, विभिन्न परिस्थितियों में यह विविधता अन्य महत्त्वपूर्ण जैविक भूमिकाएं भी अदा कर सकती है। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जितनी विविधता हमें नज़र आती है उसमें से कुछ ऐसी होती है जो अगली पीढ़ी में भी पहुंचती है जबकि कुछ विविधता वंशानुगत नहीं होती। प्राकृतिक चयन और जैव विकास का सम्बंध वंशानुगत विविधता से है। जैसे मनुष्यों में कद है। कद कुछ हद तक आनुवंशिक गुण है मगर काफी हद तक परवरिश पर निर्भर करता है। मगर आंखों का रंग पूर्णतः आनुवंशिक गुण है।

मच्छरों का उदाहरण लेते हैं। सभी जानते हैं कि 1960 के दशक में मलेरिया उन्मूलन के अंतर्गत यह विचार था कि दुनिया से मच्छरों का सफाया कर दिया जाए; न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। इसके लिए डीडीटी नामक रसायन को प्रमुखता से अपनाया गया। शुरुआती नतीजे नाटकीय थे। लगा था कि मच्छरों का सफाया देर सबेर हो ही जाएगा। मगर फिर मच्छरों ने पलटवार किया। धीरे-धीरे मच्छरों पर डीडीटी का असर होना बंद हो गया। कहा गया कि मच्छरों में प्रतिरोध क्षमता विकसित हो गई है।

दरअसल, यह क्षमता 'विकसित' नहीं हुई थी। कुदरती तौर पर मच्छर समुदाय में कुछ सदस्य ऐसे थे जिनमें एक सुरक्षा व्यवस्था मौजूद थी और संयोगवश यह डीडीटी के खिलाफ कारगर साबित हुई। जब तक डीडीटी का उपयोग बड़े पैमाने पर नहीं हुआ था तब तक इस क्षमता से कोई विशेष लाभ/हानि नहीं थी। मगर जैसे ही डीडीटी का छिड़काव बड़े पैमाने पर शुरू हुआ, यह क्षमता महत्त्वपूर्ण हो गई। डीडीटी छिड़कने पर प्रतिरोध क्षमता वाले मच्छर नहीं मरते थे, जबकि शेष बड़ी संख्या में मारे जाते थे। तो प्रतिरोध क्षमता वाले मच्छर संतान पैदा करने के लिए ज़्यादा समय तक जीवित रहते थे। गौरतलब है कि डीडीटी के खिलाफ यह प्रतिरोधी क्षमता वंशानुगत गुण था यानी संतानों को भी मिल जाता था। धीरे-धीरे मच्छरों की आबादी में इन प्रतिरोधी मच्छरों की तादाद बढ़ने लगी। एक समय ऐसा आया कि ये मच्छर आबादी के बड़े हिस्से हो गए। जब आबादी में गुणधर्मों की आवृत्ति में परिवर्तन होता है, तो हम कहते हैं कि उस आबादी में विकास हुआ है। यहां दो-तीन बातों पर ध्यान देना ज़रूरी है। पहली बात तो यह है कि विकास आबादी के स्तर पर हुआ है, एक-एक सदस्य के स्तर पर नहीं। जो मच्छर पहले प्रतिरोधी थे, वे और उनकी संतानें प्रतिरोधी हैं, जबकि जो मच्छर गैर-प्रतिरोधी थे वे और उनकी संतानें आज भी गैर-प्रतिरोधी हैं। दूसरा, ऐसा नहीं हुआ है कि डीडीटी छिड़कने के बाद प्रतिरोध की उत्पत्ति हुई हो। तीसरी बात यह है कि आज भी मच्छरों की आबादी में दोनों तरह के मच्छर मौजूद हैं। अंतर सिर्फ इतना पड़ा है कि आबादी में इनका संतुलन बदला है। डीडीटी दरअसल मच्छरों के बीच चयन का काम करता है (कई अन्य कारकों की तरह)।

एक गौरतलब बात यह भी है कि प्रतिरोधी और गैर-प्रतिरोधी मच्छर आज भी आपस में प्रजनन क्रिया कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, ये दो अलग-अलग प्रजातियां नहीं हैं। इनमें परस्पर प्रजनन क्रिया के चलते गुणधर्मों का मेलजोल (पुनर्मिश्रण) संभव है। अर्थात यदि डीडीटी छिड़कना बंद कर दिया जाए, तो हो सकता है कि देर सबेर मच्छर की आबादी अपने पुराने संतुलन में पहुंच जाए।

यहां सवाल उठता है कि प्रजाति का निर्माण कैसे होता है। उपरोक्त उदाहरण में यदि किसी वजह से प्रतिरोधी और गैर-प्रतिरोधी मच्छरों के बीच प्रजनन का अवरोध पैदा हो जाता तो संभव था कि ये दो अलग-अलग प्रजातियां बन जातीं। चूंकि उस स्थिति में इनके बीच आनुवंशिक गुणों का मिश्रण होना रुक जाता, इसलिए इनके विकास के मार्ग भी एक-दूसरे से स्वतंत्र हो जाते। मगर ऐसा नहीं हुआ।

जैव विकास की प्रक्रिया में ऐसा भी कई बार होता है कि किसी आबादी में विविधता के आधार पर चयन होता है और फिर किसी वजह से दो समूहों के बीच प्रजनन अवरोध पैदा हो जाता है। उस स्थिति में दो अलग-अलग प्रजातियां नज़र आने लगती हैं। ये प्रजनन अवरोध कई किस्म के हो

सकते हैं। जैसे कुछ पक्षियों में देखा गया है कि उनके गीत में थोड़ा-सा परिवर्तन आने पर वे एक-दूसरे की पुकार का जवाब नहीं देते और प्रजनन नहीं कर पाते। कालांतर में ये एकदम अलग-अलग हो जाते हैं। इसी प्रकार से कई प्रवासी पक्षी और मछलियां संभोग व निषेचन के लिए लगभग एक निर्धारित समय पर किसी स्थान पर पहुंचते हैं। यदि दो समूहों के बीच इस समय में परिवर्तन हो जाए, तो प्रजनन नहीं हो पाता। वैज्ञानिकों ने कई प्रजातियों का अध्ययन करके देखा है कि तमाम किस्म के अवरोध कारगर रूप से एक ही प्रजाति के दो सदस्यों के बीच प्रजनन में रुकावट पैदा कर सकते हैं।

यहां गौरतलब बात यह है कि जब प्रजनन में प्रतिरोध पैदा होता है तो दोनों समूह जीवित रहते हैं। ऐसा नहीं होता कि एक समूह का सफाया हो जाएगा। इसलिए विकास का मतलब यह नहीं होता कि एक समूह किसी दूसरे समूह में तबदील हो जाए। इसका मतलब बस इतना होता है कि किसी प्रजाति के सदस्यों के बीच विविधता के अनुपात में अंतर आए, और कभी-कभार यह अंतर ऐसा हो कि दो समूहों के बीच प्रजनन क्रिया संभव न रह जाए।

दरअसल, यह विचार कि विकास का मतलब है कि किसी जीव का कायांतरण किसी अन्य श्रेष्ठतर जीव में हो जाता है, जैव विकास की आधुनिक समझ से मेल नहीं खाता। जैव विकास का सिद्धांत यह नहीं कहता कि सजीवों में श्रेष्ठता की दिशा में कोई एकदिश यात्रा चल रही है और कुछ जीव अन्यों से श्रेष्ठतर हैं। जीवजगत कोई सांप-सीढ़ी का खेल नहीं है। यह कहना उचित नहीं है कि जब एक प्रजाति सीढ़ी की अगली पायदान पर जाती है तो पिछली पायदान खाली करके जाती है। दरअसल प्रजातियां जब अलग-अलग हार पकड़ती हैं तब वे एक-दूसरे से भिन्न होती हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि कोई एक-दूसरे से श्रेष्ठ होती है या ऊंचे सोपान पर होती है।

उदाहरण के लिए, पक्षी उड़ सकते हैं और मछलियां पानी में तैर सकती हैं। किसे श्रेष्ठ कहेंगे? छिपकलियां छत पर उल्टी चिपककर चल सकती हैं, मनुष्य ऐसा नहीं कर सकते। चींटियां ऊंचाई से गिरकर भी मरती नहीं, हम गिरेंगे तो सलामत रहना मुश्किल है। हम इतना ही कह सकते हैं कि हम कॉकरोचों से भिन्न हैं। यह कहना ठीक नहीं है कि हम उनसे बेहतर हैं क्योंकि यदि परमाणु बिजली घर में विस्फोट हुआ तो शायद कॉकरोच जीवित रहेंगे, हम तो विकिरण से मारे जाएंगे। जैव विकास को लेकर सर्वाधिक आपत्तियां इसीलिए उठाई जाती रही हैं कि मनुष्य को अपनी सर्वश्रेष्ठता पर आंच आना कदापि रास नहीं आता।

हमें यह सोचना स्वाभाविक लगता है कि हम 'ज़्यादा विकसित' हैं। मगर जीव विज्ञान की दृष्टि से इस बात का कोई अर्थ नहीं है। यह कहना ज़्यादा सही है कि हम 'भिन्न रूप से विकसित' हैं। यह सही है कि इस विकास के दौरान हमें जो बुद्धि मिली, और उस बुद्धि व भाषा की बदौलत हमने जो संस्कृति व टेक्नॉलॉजी विकसित की उसके चलते हम बहुत सफल रहे हैं।

अब अंतिम बात। क्या हम बंदरों के वंशज हैं। वैसे तो उपरोक्त चर्चा से बात स्पष्ट हो गई होगी मगर फिर भी 'दो शब्द' कहना लाज़मी है। 'दो शब्दों' में इस सवाल का जवाब है, 'जी नहीं'। थोड़ा विस्तार में देखते हैं।

जीवाश्म प्रमाणों और जिनेटिक विश्लेषण के आधार पर वैज्ञानिक यह मानते हैं कि बंदर और हम एक ही पूर्वज से उभरे हैं। चूंकि जीवाश्म प्रमाण एकदम अटूट नहीं हैं, इसलिए टुकड़ों-टुकड़ों में मिले प्रमाणों के आधार पर विभिन्न विचार उभरे हैं। परंतु उससे पहले एक बात का स्पष्टीकरण ज़रूरी है। आप बंदर किसे कहते हैं। आम बोलचाल की भाषा में हम सब जानते हैं कि बंदर क्या हैं। कई बार इनमें गोरिल्ला, चिम्पैंज़ी और बोनोबो को भी शामिल कर लिया जाता है हालांकि तकनीकी रूप से वे बंदर नहीं बल्कि एप्स हैं। इनमें उन बंदरों को भी शामिल करना होगा जो करीब ढाई करोड़ वर्ष पूर्व अस्तित्व में थे। वैज्ञानिक मानते हैं कि करीब 4 करोड़ वर्ष पूर्व पेड़ों पर रहने वाला *एजिप्टोपिथेकस* नामक प्राणी मनुष्यों का पूर्वज था। आज होता तो उसे बंदर ही कहते।

अब देखिए, किसी ने करीब 3-4 अरब वर्षों का विकास तो देखा नहीं है। टुकड़ा-टुकड़ा प्रमाणों के आधार पर जो चित्र बनता है वह कुछ इस तरह से है।

करीब 70 लाख से 1 करोड़ वर्ष पूर्व पूंछरहित प्राइमेट्स (यानी एप्स) की बड़ी आबादी अफ्रीका के जंगलों में निवास करती थी। ये सारे एप्स एक-दूसरे के साथ प्रजनन कर पाते थे। ऐसा माना जाता है कि ये एप्स आजकल के गोरिल्ला, चिम्पैंज़ी या बोनोबो से मिलते-जुलते थे।

धीरे-धीरे इनकी आबादी खूब बढ़ी और जंगल की वहन क्षमता की सीमा आ गई। संसाधनों के लिए आपस में भी खूब संघर्ष चला और बड़ी संख्या में एप्स मारे गए। तो एप-संख्या में एक संतुलन आ गया।

कुछ एप्स जंगल के किनारों पर रहते थे जहां जंगल इतना घना नहीं था। घास के मैदान लगे हुए थे। पेड़ थे मगर काफी छितरे हुए थे। ये एप्स भी जंगलों में रहने के लिए अनुकूलित हुए थे। मगर यहां प्रतिस्पर्धा थोड़ी कम थी। इस सरहदी पर्यावरण में रहने वाले एप्स धीरे-धीरे इसके लिए अनुकूलित हुए। यहां पेड़ पर चढ़ने की क्षमता उतनी अहम नहीं थी जितनी कि ज़मीन पर भागने की क्षमता। इसके अलावा दूर से पत्थर वगैरह फेंककर शिकार को मारने की क्षमता भी महत्त्व रखती थी। तो यहां घास के मैदान में जीने की क्षमताओं वाले एप्स की संख्या में वृद्धि होती गई।

इन क्षमताओं वाले एप्स की शरीर रचना भी बाकी से अलग थी। धीरे-धीरे जंगल के अंदर और जंगल की सरहदों पर रहने वाले एप्स के बीच भिन्नताएं बढ़ती गईं और एक समय ऐसा आया कि वे आपस में प्रजनन करने योग्य नहीं रह गए। इस प्रक्रिया में कितने साल लगे होंगे, कहना मुश्किल है मगर ऐसा माना जाता है कि संक्रमण काल में लंबे समय तक ये सारे एप्स आपस में प्रजनन करते रहे थे। ऐसा माना जाता है कि इन्हें पूरी तरह अलग-अलग होकर भिन्न प्रजातियां बनने में तकरीबन 10,000 पीढ़ियों का वक्त लगा होगा।

तो यदि हम उन एप्स को भी बंदर मानें, तो निश्चित रूप से बंदर हमारे पूर्वज थे।

यह बात शायद मनुष्यों को पसंद नहीं आती है क्योंकि हम खुद को सबसे विशिष्ट मानना चाहते हैं। मगर यह भी सोचने की बात है कि इस तरह की व्यवस्था में मनुष्य कितनी सहजता से प्रकृति के साथ, उसके हर सजीव के साथ जुड़ जाते हैं, एकाकार हो जाते हैं। दरअसल जैव विकास का सिद्धांत हमें सिर्फ आजकल के नहीं बल्कि अतीत में अस्तित्व में रहे सारे प्राणियों के साथ एक सूत्र में बांध देता है। ***(स्रोत फीचर्स)***